Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 15, Issue No. 7, September-2018, ISSN 2230-7540

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और प्रताप नारायण मिश्र का हिन्दी साहित्य में पदार्पण

Renu Mittal*

Assistant Professor, RKSD College, Kaithal, Haryana

सार – *ईस्ट इंडिया कंपनी में काम करने वाले कर्मचारियों की नियुक्तियाँ इंग्लैंड स्थित कोर्ट ऑफ़ डायरेक्टर द्वारा की जाती थी इनकी पदोन्नति वरिष्ठता के आधार पर की जाती थी। ईस्ट इंडिया कंपनी में ज्यादातर कर्मचारी कम आयु (17 या 18 वर्ष) नगरों में निवास करने वाले निम्न वर्ग से संबंध रखते थे या जेल से निकाले हुए होते थे। इनमें अधिकांश कर्मचारी अशिक्षित एवं अर्द्धशिक्षित होते थे, जिनको सामान्य व्यापार की सामान्य शिक्षा देकर भेजा जाता था। इसलिए उनके लिए कंपनी का हित गौण और अपना सर्वोपरि हो जाता था। जिसके कारण वे अनैतिक ढंग से धन कमाने में लग जाते थे। इस संबंध में ए. डी. कीथ ने लिखा है कि 'कार्नवालिस की सेना बहुत बड़ी थी- कुल मिलाकर 70,000 हजार सैनिक थे, किन्तु बहुत घटिया किस्म की थी, विशेषकर कंपनी सेना के 6,000 यूरोपियन जो लंदन की गलियों के निम्न लोग और जेलों से निकाले हुए होते थे तथा जिनके अधिकारी नष्ट-भ्रष्ट युवक या धन के पीछे भागने वाले धन लोलुप व्यक्ति थे। ईस्ट इंडिया कंपनी के कर्मचारियों के चारित्रिक पतन का सबसे बड़ा कारण उनके वेतन का पर्याप्त नहीं होना भी था। इस कारण से अधिकांश व्यापारियों ने अपना निजी व्यवसाय प्रारंभ कर दिया। इस संबंध में गुरू निहाल सिंह ने लिखा है कि "यह निजी व्यवसाय अपने लिए अधिक से अधिक धन कमाने की इच्छा से किया जाता था। क्योंकि उनके वेतन हास्यास्पद रूप से कम होते थे। पांच साल से काम करने वाले मुंशी को 10 पौंड प्रतिवर्ष मिलते थे। परिषद के सदस्यों को 80 पौंड प्रति वर्ष तथा गवर्नर को केवल 300 पौंड प्रतिवर्ष मिलते थे।*

----------X----------

प्रस्तावना

भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन स्थापित होने के कुछ समय बाद कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। इसके पीछे प्रमुख कारण था शासन में आने वाली कठिनाईयाँ। कंपनी का शासन स्थापित होने के पश्चात अंग्रेजों ने सर्वप्रथम यहाँ की शिक्षा पद्वति को ध्वस्त किया। अगर पूरे भारतीय इतिहास को देखा जाय तो किसी भी शासक ने भारत की शिक्षा व्यवस्था को उतना आघात नहीं पहुँचाया जितना की अंग्रेजों ने। अभी तक भारतीय राजाओं से जो शिक्षा के लिए आर्थिक सहायता मिल रही थी वह बंद हो गयी। इस कारण से अनेक शिक्षण संस्थाएँ आर्थिक अभाव के कारण बंद हो गयी और अशिक्षित लोगों की संख्या में दिन-प्रतिदिन बढ़ोतरी होती चली गयी।

भारत में अंग्रेजों के आने के पूर्व भारतीय शिक्षा पद्धति अत्यंत सुदृढ़ थी। जिस शिक्षा और ज्ञान के लिए भारत जाना जाता था उसका धीरे-धीरे पतन होने लगा। जिसका दूर गामी परिणाम था- अन्धविश्वास, रूढ़िवाद और बाह्याडंबर की अत्यधिक मात्रा में बढ़ोत्तरी तथा भारतीयों का खुद से विश्वास उठ जाना। "मैक्समूलर ने सरकारी लेखों के आधार पर और एक मिशनरी रिपोर्ट के आधार पर जो बंगला पर अंग्रेजों का कब्जा होने से पहले वहाँ की शिक्षा की व्यवस्था के संबंध में लिखा था कि- उस समय बंगाल में 80,000 देषी पाठशालाएँ थी, यानी की सूबे की कुल आबादी के हर चार सौ मनुष्यों के पीछे एक पाठशाला मौजूद थी।

कंपनी का मुख्य उद्देश्य अधिक से अधिक लाभ कमाना था। इसके शासन में कोई भी कार्य ऐसा नहीं किया गया जिससे उनका निजी स्वार्थ नहीं जुड़ा हो, चाहे वह रेल, डाक, और विद्यालयों से संबंधित कार्य क्यों न हों। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि अंग्रेज प्रारंभिक दिनों में भारतीय शिक्षा का सर्वनाश करना चाहते थे। 1792 में ब्रिटिश पार्लियामेंट में विलवरफोर्स एवं उनके सहयोगियों द्वारा भारतीयों को शिक्षा देने के समर्थन में प्रस्ताव रखा, लेकिन कंपनी के सहयोगियों ने इसे ठुकरा दिया। इस संबंध में

www.ignited.in

मार्शमैंन ने लिखा है कि "उस अवसर पर कंपनी के एक डायरेक्टर ने कहा कि हम लोग

अपनी इसी मूर्खता से अमेरिका को हाथ से धो बैठा है, क्योंकि हमने उस देश में स्कूल और कॉलेज कायम हो जाने दिए, अब फिर भारत में उसी मूर्खता को नहीं दुहराना चाहते है।"[2] सन 1913 तक यानि बीस साल बाद तक भारतीयों को शिक्षा देने के संबंध में अंग्रेजों की यही धारणा रही।

इतने विरोध के बावजूद भारतीयों को शिक्षित करने की ओर अग्रसर होना तथा उनके शिक्षा का प्रबंध करना अंग्रेजों की जरूरत ही नहीं अपितु मजबूरी थी। अंग्रजों को भारतीय भाषाओं की जानकारी नहीं थी। जिससे उनको जनता के विचारों को समझ पाने और अपने विचारों को समझा पाने में दिक्कतें आती थीं। अपनी शासन संबंधी समस्या को ध्यान में रखते हुए भारतीय जनता की शिक्षा व्यवस्था पर ध्यान दिया। इस कारण से अनेक पाठशालाओं, स्कूलों, कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों की स्थापना की गयी।

प्लासी के युद्ध के बाद अंग्रेजों का शासन भारत के कुछ क्षेत्रों पर बंगाल, बिहार और उड़ी सा1⁄2 स्थायी रूप से स्थापित हो गया था। अगर 1757 से 1813 की अवधि पर विचार किया जाय तो हम पाते हैं कि यह भारतीय शिक्षा, व्यापार और राजनीति के दुर्दशा का समय था। इस पूरी अवधी में शिक्षा के क्षेत्र में कोई खास काम नहीं हुआ, किन्तु 1780 में वारेन हेस्टिंग ने मुस लमानों के तुष्टीकरण के लिए 'कलकत्ता मदरसा' की और बनारस रेजीडेंट ने सन 1791 में बनारस में 'संस्कृत कॉलेज' की नींव डाली।

भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना के पूर्व अनेक विदेशी शासकों का आगमन हुआ कुछ वापस चले गये, कुछ ने यहाँ पर रहने का फैसला किया तो कुछ ने अपना उपनिवेश बनाया। व्यापार की दृष्टि से सर्वप्रथम पुर्तगालियों का आगमन हुआ, इसके बाद डच, फ्रांसीसियों और फिर अंग्रेजों का। इनमें डच और पुर्तगाली वापस चले गये, और बचे फ्रांसीसी और अंग्रेज इन दोनों कंपनियों में प्रतिस्पर्धा बढ़ गई। ऐसी स्थिति भारत के अलावा यूरोप में भी पैदा हो गयी जिसके फलस्वरूप इंग्लैड और फ्रांस में युद्ध की स्थिति पैदा हो गयी। इनका यह व्यापारिक झगड़ा इतना बढ़ गया कि राजनीतिक रूप धारण कर लिया। इन दोनों ने एक दूसरे की व्यापारिक बस्तियों पर घेरा डालना शुरू कर दिया। इस स्थिति में अंग्रेजों से त्रस्त भारतीय राजाओं ने फ्रांसीसियों का साथ दिया। कुछ ऐसे भी राजा थे जो अपनी आपसी दुष्मनी निकालने के लिए एक दूस रे के विरोधियों से जा मिले। इस सबंध में फ्रांसीसियों की पराजय हुई। इस युद्ध में लार्ड क्लाइव जैसे चतुर सैनिक ने अपनी कूटनीति का अच्छा परिचय दिया। उसने परिस्थिति के अनुसार अपना निर्णय लिया। जिसके फलस्वरूप जून 1757 ई0 में प्लासी के युद्ध में कम सैनिक होते हुए भी अपनी कूटनीति के बल पर बंगाल के नवाब सिराजुदौला को हराने में सफल रहा।

बक्सर के युद्ध (1765 ई0) में बंगाल की रही सही शक्ति समाप्त हो गयी। बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी कंपनी के हाथों में आ जाने के बाद उनकी राजनीतिक महत्वाकांक्षाएँ बढ़ती चली गयीं। इतने बड़े क्षेत्र पर अधिकार हो जाने पर कंपनी के सामने सबसे बड़ी समस्या थी वहाँ की शासन व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने की। इसके अधिकांश कर्मचारी अयोग्य थे। अब कंपनी भयंकर दुविधा में फस चुकी थी- वह आगे बढ़ नहीं सकती थी, अगर वह आगे बढ़ी तो उसके सामने अनेक कठिनाईयाँ मुँह बाये खड़ी थीं। इस संबंध में ताराचंद ने लिखा है कि "इतने अधिक लोग से भरे विशाल प्रदेश पर अधिकार हो जाने पर बहुत ही जटिल कानूनी तथा संवैधानिक समस्याएँ सामने आई। ईस्ट इंडिया कंपनी एक वाणिज्यिक संस्था थी, इंग्लैड की सरकार ने जन्म दिया था। वह उन्हीं कार्यों का पालन और उन्हीं अधिकारों का उपभोग करती थी, जो राज्याध्यक्ष द्वारा स्वीकृतशासन पत्रों में स्वहित होते थे क्या वह अपने मातृभूमि की राजनीतिक व्यवस्था में उथल-पुथल की आशंका उत्पन्न किये बिना एक ऐसे भूभाग की सर्वोच्च सत्ताधिकारिणी बन सकती थी, जिसका क्षेत्र फल 1,50,000 वर्ग मील था और जिसमें तीन करोड़ व्यक्ति रहते थे? साम्राज्य के भीतर साम्राज्य की स्थिति सदैव भयंकर सिद्ध होती है और उस दशा में तो यह और भी भयंकर हो जाती है, जब यह अधिकार एक व्यापारी-वर्ग के विवेकहीन तथा मुनाफाखोर सदस्यों के ढके-मुर्दे ध्वनितंत्र से प्राप्त हो जाता है।

ईस्ट इंडिया कंपनी में काम करने वाले कर्मचारियों की नियुक्तियाँ इंग्लैंड स्थित कोर्ट ऑफ़ डायरेक्टर द्वारा की जाती थी इनकी पदोन्नति वरिष्ठता के आधार पर की जाती थी। ईस्ट इंडिया कंपनी में ज्यादातर कर्मचारी कम आयु (17 या 18 वर्ष) नगरों में निवास करने वाले निम्न वर्ग से संबंध रखते थे या जेल से निकाले हुए होते थे। इनमें अधिकांश कर्मचारी अशिक्षित एवं अर्द्धशिक्षित होते थे, जिनको सामान्य व्यापार की सामान्य शिक्षा देकर भेजा जाता था। इसलिए उनके लिए कंपनी का हित गौण और अपना सर्वोपरि हो जाता था। जिसके कारण वे अनैतिक ढंग से धन कमाने में लग जाते थे। इस संबंध में ए0 डी0 कीथ ने लिखा है कि 'कार्नवालिस की सेना बहुत बड़ी थी- कुल मिलाकर 70,000

www.ignited.in

हजार सैनिक थे, किन्तु बहुत घटिया किस्म की थी, विशेषकर कंपनी सेना के 6,000 यूरोपियन जो लंदन की गलियों के निम्न लोग और जेलों से निकाले हुए होते थे तथा जिनके अधिकारी नष्ट-भ्रष्ट युव क या धन के पीछे भागने वाले धन लोलुप व्यक्ति थे।

ईस्ट इंडिया कंपनी के कर्मचारियों के चारित्रिक पतन का सबसे बड़ा कारण उनके वेत न का पर्याप्त नहीं होना भी था। इस कारण से अधिकांश व्यापारियों ने अपना निजी व्यवसाय प्रारंभ कर दिया। इस संबंध में गुरू निहाल सिंह ने लिखा है कि "यह निजी व्यवसाय अपने लिए अधिक से अधिक धन कमाने की इच्छा से किया जाता था। क्योंकि उनके वेत न हास्यास्पद रूप से कम होते थे। पांच साल से काम करने वाले मुंशी को 10 पौंड प्रतिवर्ष मिलते थे। परिषद के सदस्यों को 80 पौंड प्रति वर्ष तथा गवर्नर को केव ल 300 पौंड प्रतिवर्ष मिलते थे।" इसी संबंध में "फ्रांसीसी गवर्नर डूप्ले द्वारा अंग्रेज कर्मचारियों एवं अधिकारियों की दयनीय स्थिति के बारे में वेक्सनकोर्ट को 15 जनवरी 1753 ई0 को एक पत्र लिखा जिसमें उसने कहा कि कंपनी कर्मचारियों एवं अधिकारियों के रूप में ऐसे भिखमंगों को भेजती है, जिनके पास तन ढकने के लिए एक कमीज भी नहीं होती।" कंपनी के कर्मचारियों की ऐसी दशा होने का कारण आर्थिक कमी एवं अशिक्षा प्रमुख थी। लार्ड क्लाइव ने दूसरी बार इस स्थिति में सुधार का प्रयास किया परंतु सफलता नहीं मिली। कंपनी के कर्मचारियों की लूट-पाट इतनी बढ़ गयी कि बंगाल के नबाब मीर कसिम ने 1762 में अंग्रेज गर्वनर और उसकी कौंसिल से षिकायत किया कि "यही तरीका है जिससे आपके भद्रजन (कर्मचारी) व्यवहार करते हैं। मेरे पूरे देष में कर्मचारियों को आहत तथा अपमानित कर रहे हैं... कंपनी के अनुमति पत्र दिखकर और बिल्ले लगाकर वे किसानों, व्यापारियों, और अन्य देशवासियों को उत्पीड़ित करने के अधिकतम प्रयत्न करते हैं... व्यापारियों, किसानों आदि का माल वे जबदस्ती चैथाई कीमत पर ले जाते हैं। अक्सर अत्याचार तथा दमन के द्वारा किसानों को एक रूपये के माल के बदले पांच रूपये देने के लिए बाध्य करते हैं।

सन 1798 में मर्किस बेलेजली भारत आया। यह उन गवर्नर जनरलों में था जिसने भारत में कंपनी के शासन को सुदृढ़ एवं विस्तृत करने में अहम भूमिका अदा की। वेलेजली अपने पूर्ववर्ती गवर्नरों से एकदम अलग था उसने पुराने का अनुसरण नहीं किया अपितु नये रास्तों की तलाश की, जिससे की ब्रिटिश सम्राज्य की सर्वोच्चता तथा स्थायित्व बना रहे वेलेजली कंपनी के कर्मचारियों को कुशल व्यापारी के रूप में ही नहीं देखना चाहते था अपितु कूटनीतिज्ञ के रूप में देखना चाहता था। "लार्ड वेलेजली का मुख्य उद्देश्य सम्पूर्ण भारत में शांति स्थापित करना तथा ब्रिटिश प्रदेशों को स्थायी सुरक्षा प्रदान करना था।" इसके लिए, वह भारतीय रियासतों में ब्रिटिश सत्ता की श्रेष्ठता को लादना चाहता था और ताकत के बल पर या मैत्री संबंधों द्वारा, उन्हें सर्वोच्च सत्ता के अधीन करना तथा अंग्रेजी मध्यस्थता या नियंत्रण पर भविष्य में चुनौती के किसी प्रयास पर प्रभावशाली रोक लगाना चाहता था। उसने भारतीय राज्यों के लिए नाममात्र के लिए भी, ब्रिटिश सरकार का दर्जा न देकर, राजनीति प्रधानता के साम्राज्यदी सिद्धान्त को लागू करने की घोषणा की और पुरानी नीति में आमूल परिवर्तन किया।

जिस समय वारेन हेस्टिंग भारत आया उस समय कंपनी के कर्मचारियों की दशा अत्यन्त दयनीय थी। वारेन हेस्टिंग उच्च शिक्षा प्राप्त पदाधिकारी था, उसकी साहित्य में विशेष रूचि थी। उसने भारत आने के बाद से ही बंगला भाषा का ज्ञान प्राप्त किया।

नियुक्ति "सन 1873 में रेगुलेटिंग एक्ट (Regulating Act) के अन्तर्गत ही उसकी पदोन्नति बंगाल के प्रथम गवर्नर-जनरल के रूप में हुई। उसने कंपनी के कर्मचारियों की दषा देखकर समझ गया कि इनको भारतीय भाषाओं से परिचित करना अति आवश्यक है। इस बात को ध्यान में रखते हुए कलकत्ता मदरसा (1782) और हिन्दू कॉलेज (1792) की स्थापना की। 'सुप्रसिद्ध विद्वान और न्यायधीश सर विलियम जोन्स ने वारेन हेस्टिंग की सहायता से 15 जनवरी, 1884 ई. को बंगाल की एशियाटिक सोसायटी की नींव डाली। इसके सदस्यों में संस्कृत के विद्वान थौमस कोलब्रुक थे। जो एक सिविल सर्वेन्ट (असैनिक अधिकारी) थे और कालंतर में प्रगति करते हुए गवर्नर-जनरल की कौंसिल के सदस्य निर्वाचित हुए।' इन्होंने हिन्दुस्तानी का दूसरा रूप हिन्दी माना है।

वेलेजली का मुख्य उद्देश्य

साम्राज्य का विस्तार करना था। इसके लिए उसने दो प्रकार की नीतियाँ निर्धारित कीं। प्रथम साम्राज्यवादी नीति के तहत साम्राज्य विस्तार किया। उसकी इस नीति को सहायक संधि का नाम दिया जाता हैं। दूस रे के तहत इसे कार्य रूप देना शुरू किया। वेलेजली कंपनी का गवर्नर बनने से पूर्व 'बोर्ड ऑफ़ कंट्रोल' का सदस्य था। इस कारण से उसमें अपने पूर्ववर्ती गवर्नरों से प्रशासनिक अनुभव अधिक था। वेलेजली को कंपनी कर्मचारियों की स्थिति समझते देर नहीं लगी।

www.ignited.in

आचरण और अनुशासन संबंधी गुणों के कमी के मूल कारण अशिक्षा एवं वेत न का पर्याप्त नहीं होना, उसकी समझ में आ गया था। वेलेजली ने इस संबंध में खुद लिखा है कि "वर्तमान व्यवस्था अपर्याप्त थी। सोलह और अठठारह वर्ष की उम्र में कंपनी में क्लर्क आ जाते थे और अपने कार्यों के प्रति नितांत अयोग्य एवं अनभिज्ञ रहते थे। उनको भाषा का कोई ज्ञान नहीं रहता था। घर से जो शिक्षा प्रा प्त करके आते थे, वह इतनी संकुचित थी कि उनकी सीमाएं व्यापार तक ही सिमटकर रह जाती थी। अपनी अयोग्यता के कारण वे व्यभिचार और अकर्मण्यता में फँसकर रह जाते थे तथा उन्हें आगे शिक्षा जारी रखने के लिए प्रोत्साहन तक भी उपलब्ध नहीं होता था।"[10]

कंपनी के शासन में उड़ीसा, बिहार और बंगाल आ जाने के बाद कंपनी के कर्मचारियों का कार्य मात्र व्यापार तक सीमित न रहकर अब प्रशासनिक हो गया। वेलजली के भारत "आने पर ईस्ट इंडिया कंपनी एक व्यापारिक संस्था मात्र थी। सर्वोपरि राजनीति बनाकर छोड़ा। इन सभी उदेश्यों की पूर्ति के लिए उसने 1800 में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की। वास्तव में कॉलेज की स्थापना का सरकारी अध्यक्ष गिलक्राईस्ट (17567-1841) द्वारा संचालित 'ओरिएंटल सेमिनरी' से घनिष्ठ संबंध था। 24 दिसम्बर, 1798 को गिलक्राइस्ट की 'ओरिएंटल सेमिनरी' से संचालक के पद पर नियुक्ति हुई थी।

और फरवरी, 1799 से पठन-पाठन का वास्तविक कार्य प्रारंभ कर दिया था। वेलजली ने प्रशासन में आने वाली अनेक कठिनाईयों की ओर विशेष रूप से ध्यान देना शुरू कर दिया। लार्ड वेलेजली ने इस संबंध में कहा है कि "कंपनी के कर्मचारियों की सेवाएँ, पहले सिर्फ व्यापारिक होती थीं, परन्तु प्रादेशिक विस्तार के साथ-साथ उन्हें अन्य समस्याओं से उलझना पड़ता था। जजों और कलक्टरों के रूप में उनके कार्य संसार के किसी भी कार्य से अधिक कठिन और जटिल थे, कवित्त और राजस्व जैसे जटिल विषयों की व्यवस्था भी उन्हें करनी पड़ती थी। विभिन्न भाषाओं तथा जाति के लाखों लोगों को न्याय देना पड़ता था, और अब वे एक व्यापारिक संस्था के सदस्य नहीं कहला सकते थे। कंपनी के कर्मचारियों को भारतीय भाषाओं का ज्ञान नहीं होने के कारण प्रारंभिक दिनों में अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। शुरूआती दौर में ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपने काम-काज की भाषा फारसी ही रखी। यह भाषा जानने वाले अल्पसंख्यक लोग थे, तथा प्रशासक और आम जनता के समझ से परे थी। इसको जानने वाले लोगों पर अधिकारियों की विशेष कृपा रहा करती थी। प्रारंभिक दौर में सरकार ने प्रांतीय भाषाओं की ओर ध्यान नहीं दिया। जिससे उनको अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। बाद में कंपनी के प्रशासकों को यह लगा कि भारतीय भाषाओं का अध्ययन किये बिना भारत पर लंबे समय तक शासन करना मुश्किल है। सन 1881 ई0 में प्रस्ताव पारित किया गया कि भारतीय न्यायालयों में मुकदमों का निर्णय अंग्रेजी कानून के आधार पर न करके भारतीय संवैधानिक पद्धति के आधार पर किया जायेगा। शासन सूत्र हाथ में आ जाने के बाद राज्य के हित के लिए, उसके सुचारू रूप से संचालन के लिए, शासकों और शासितों में संपर्क बढ़ा ने और शासितों की देख-भाल और उनके साथ न्याय बरतने की गुंजाईश देशी भाषाओं और रीति-रस्मों का ज्ञान भाषा के द्वारा ही विशेषकर हो सकता है। इस दृष्टि से भाषा का महत्वपूर्ण स्थान ठहरता है। भाषा का प्रश्न उठने पर अधिकारियों के सामने उसे हल करने के दो मार्ग थे। एक तो जनता अंग्रेजी भाषा सीखती या उनके और सरकार के बीच तमाम लिखा-पढ़ी इस भाषा के द्वारा होता। दूसरे अंगरेज जो संख्या में बहुत थोड़े थे, जनता को अपनी (अंग्रेजी) भाषा सीखने पर बाध्य करने के बजाय स्वयं जनता की भाषा सीखते।

भारतेन्दु हरिश्चन्द

भारतेन्दु हरिश्चन्द का हिन्दी साहित्य में पदार्पण बड़े सौभाग्य की बात है। इन्होंने हिन्दी को नई दिशा देने का जो काम किया वैसा इनके पूर्ववर्ती किसी अन्य रचनकार नहीं किया था। इनके पूर्ववर्तियों में राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द और लक्ष्मण सिंह का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है। इन लोगों ने हिन्दी को स्थापित करने में सराहनीय काम किया। इनके अलावा भी कुछ रचनाकार ने हिन्दी में अपने विशेष योगदान के लिए जाने जाते हैं। 27 इनें रचनाकारों के योगदान की चर्चा हम अगले अध्याय मे करेंगे इस अध्याय में इनके कृतित्व व्यक्तित्व का सामान्य परिचय दिया गया है। भारतेंदु हरिश्चन्द का जन्म 8 सितबंर 1850 ई0 में हुआ था तथा मृत्यु 6 जनवरी 1885 ई0 में हुई। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र सर्वतोमुखी प्रतिभा सम्पन्न निबन्धकार थे। इनके निबन्धों की परिधि बहुत व्यापक है। इन्हों ने धर्म, समाज, राजनीति, आलोचना, खोज-यात्रा, प्रकृति वर्णन, आत्म चरित आदि सभी विषयों पर निबन्ध लिखा। भारतेन्दु के निबन्धों में उनकी प्रगतिशील मान्यताएँ, व्यंग्य-विनोद, उदारता, सजीवता, वैयक्तिकता आदि सब कुछ दिखाई देता है। इनके धार्मिक निबन्धों में अंधविश्वासों, मिथ्या-परम्पराओं, बाह्य आडम्बरों पर खुला प्रहार किया गया है। सामाजिक निबन्धों में इन्होंने कुरीतियों का खुलकर विरोध किया है। राजनीतिक निबन्धों में विदेशी शासन पर मीठे व तीखे व्यंग्य किये हैं। इनके यात्रा वर्णन अत्यन्त सजीव और प्राकृतिक निबन्ध

www.ignited.in

अत्यन्त मनोहारी हैं। ताजगी, जिन्दादिली, आत्मीयता, व्यक्तिकता, मौलिकता, व्यंग्यात्मकता इनके निबन्धों के विशिष्ट गुण हैं। इनके निबन्ध की भाषा सरल, सरस है। वाक्य छोटे, व्यंजक तथा भावपूर्ण हैं। मुहावरों व लोकाक्तियों में बनारसीपन हैं। इनके निबन्ध 'पाँचवे पैगम्बर' नामक निबन्ध संग्रह में संकलित है।

प्रताप नारायण मिश्र

प्रताप नारायण मिश्रः प्रताप नारायण मिश्र ने लगभग सभी विधाओं पर रचनाएँ की। ये उपन्यास लेखन के क्षेत्र में कुछ खास नहीं कर सके। बस दूसरे भाषाओं से हिन्दी में अनुवाद किया है। इनके निबन्धों में सरलता और मनमौजीपन को देख सकते हैं। इनमें कुछ रूढ़िवादिता भी थी। बेगार, रिश्वत, दशी कपड़ा, पतिव्रता, गोरक्षा, बज्र मूर्ख, भेड़िया धसान आदि उनके निबन्ध हैं। इनके निबंध विविध विषयों पर है। 'नवीन', 'प्रताप-पीयूष' और 'प्रताप-समुच्चय' इनके निबन्ध संग्रह है। उनकी भाषा में निर्बन्धता, व्यंग्य-विनोद, खरापन है। उनकी भाषा में ग्रामीण शब्द और मुहावरे हैं। इनकी शैली वातालाप के अधिक निकट है। श्री विजय शंकर ने भारतेन्दु युगीन निबन्धों की विशेषताओं को शब्दों में व्यक्त करते हुए कहा है-'भारतेन्दु युग के निबंध सचमुच का प्रयास ही है। उनमें न बुद्धि वैभव है न पाण्डित्य प्रदर्शन और ग्रन्थ ज्ञान ज्ञापन।

माधव विलास की रचना सन 1817 ई0 में हुई थी। इसकी रचना ब्रज भाषा में गद्य एवं पद्य में की गयी है। "रघुराम नामक गुजराती कवि के 'सभासार' और कृपाराम कवि द्वारा पद्य से संगृहित 'योगासार' नामक ग्रंथों का सार लेकर लल्लू जी ने इस पुस्तक की रचना की। परंतु जिन पुस्तकों का सहयोग हंटर महोदय ने हिन्दुस्तानी डिक्सनरी के निर्माणार्थ लिया था उनमें माधव-विलास का नाम नहीं है।" इनके द्वारा रचित प्रमुख ग्रन्थ- सिंहासन बत्तीसी, बेताल पच्चीसी, शकुन्तला, राजनीति, ब्रजभाषा व्याकरण, सभा विलास, लालचंद्रिका आदि प्रमुख हैं। इनको 'प्रेमसागर' की रचना करने के कारण सबसे अधिक जाना जाता है। इनकी रचनाओं के बारे में विद्वान मतैक्य नहीं हैं।

भारतीय भाषाओं के उत्थान में फोर्ट विलियम कॉलेज की अहम भूमिका है। छात्रों को पढ़ने-पढ़ाने के लिए अनेक मौलिक एवं अनूदित पुस्तकों की रचनाएँ हुईं। इसी समय प्रेस का चलन तेजी के साथ हुआ जो भारतीय भाषाओं के विकास में वरदान साबित हुई। प्रेस के चलन के बाद भारतीय भाषाओं में अनेक परिवर्तन देखने को मिलते हैं। कॉलेज में अनेक शब्दकोषों की रचना हुई, यहीं पर प्रथम बार ब्रज भाषा के सिद्धान्तों का विवेचन हुआ। हिन्दुस्तानी विभाग में दो ही व्यक्ति हुए गिलक्राइस्ट और विलियम प्राइज। "विलियम प्राइज जो हिन्दी विभाग के अन्तिम अध्यक्ष थे, ने हिन्दी कोष के निर्माण के अतिरिक्त एक और महत्वपूर्ण कार्य किया। कालिज के पत्रकारों के द्वारा हिन्दुस्तानी भाषा को आधुनिक हिन्दी नाम देने का श्रेय श्री विलियम प्राइज को ही जाता है। उनसे पूर्व कलिज के जिस विभाग को हिन्दुस्तानी विभाग कहा जाता था, उनके प्रयास से वह हिन्दी विभाग कहलाने लगा।"[46] जिस समय लल्लूलाल की नियुक्ति की गयी उस समय कॉलेज का पूरा माहौल अरबी, फारसी और उर्दू का ही था, पर लल्लूलाल ब्रजभाषा से प्रभावित खड़ी बोली लिखा करते थे। इन्हीं के साथ सदल मिश्र भी खड़ी बोली में रचनाएं किया करते थें, इनकी बोली में पूर्वीपन का प्रभाव अधिक देखने को मिलता है। इनकी प्रमुख रचनाएँ- चंद्रावती अथवा नासिकेतोपाख्यान, रामचरित अथवा अध्यात्म रामायण हैं।

हिन्दी गद्य साहित्य में फोर्ट विलियम कॉलेज की क्या भूमिका है, इस पर विद्वान मतैक्य नहीं हैं। कॉलेज में जो हिन्दी गद्य की रचनाएँ हुई वे साहित्य प्रेम की भावना से प्रेरित होकर नहीं की गयी, बल्कि भाषा से प्रेरित होकर की गयी। साहित्यिक दृष्टि से ये रचनाएं उपयुक्त न हो पर गद्य साहित्य में उसके योगदान को अस्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि हिन्दी गद्य साहित्य लेखन के लिए भारतीस इतिहास में पहली बार सरकारी सहायता इतने बड़े पैमाने पर मिली, जो आगे चलकर प्रेरणा का श्रोत बनी।

उन्नीसवीं सदी सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों के लिए जानी जाती है। इन्हीं कारणों से इसका हमारे साहित्य और इतिहास में विशिष्ट महत्व है। इस सदी में अनेक समाज सुधार आन्दोलनों की शुरुआत हुई। ये आन्दोलन कई विचारधाराओं को लेकर हुए, जिनमें धार्मिक एवं सामाजिक आन्दोलनों का प्रमुख स्थान है। इन आन्दोलनों के प्रमुख मुद्दों-विधवा विवाह, स्त्री-शिक्षा, सती-प्रथा, बाल-विवाह, जाति-प्रथा का विरोध और स्त्री-संपत्ति का अधिकार आदि थे। तत्कालीन समय में पश्चिम से शिक्षा ग्रहण करके आए नए बुद्धिजीवी वर्ग ने जब पश्चिम से अपने देश के अनेक क्षेत्रों में तुलना की तो हीन अवस्था में पाया, जिसके फलस्वरुप इनको अपनी रुढ़िवादी व्यवस्था खटकने लगी। इनको अपने पिछड़े होने का कारण समझ में आ गया। अतः इसी बुद्धिजीवी वर्ग ने सर्वप्रथम समाज सुधार की ओर अपनी विशेष रुचि दिखाई। समाज सुधार आन्दोलनों की शुरुआत सर्वप्रथम बंगाल में हुई। उन्नीसवीं शताब्दी में चल

रहे इन आन्दोलनों को विद्वानों ने 'नवजागरण' नाम दिया। नवजागरण के प्रवर्तक राजा राममोहन राय हैं। यह समाज सुधार आन्दोलन सिर्फ बंगाल तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि धीरे-धीरे अखिल भारतीय हो गया। इसका सबसे बड़ा कारण नई विचारधारा का तेज गति से प्रवाहित होना था। इन आन्दोलनों से अक्षय दत्त, केशवचन्द्र सेन, द्वेवेन्द्रनाथ टैगोर, ज्योतिबा फूले, पाण्डुरंग, दयानन्द सरस्वती आदि जुड़े रहे।

उपसंहार

उन्नीसवीं शताब्दी में सामाज सुधार आन्दोलनों के साथ-साथ धार्मिक सुधार आन्दोलन भी जुड़ा हुआ है। इस आन्दोलन के फलस्वरुप प्राचीन काल से चली आ रही धार्मिक कुरीतियों का कड़ा विरोध हुआ। वैसे तो आदिकाल से इसका विरोध होता चला आ रहा था परंतु जितने व्यापक तौर पर उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ उतने व्यापक तौर पर इससे पूववर्ती युग में देखने को नहीं मिलता है। राजाराममोहन राय ने सर्वप्रथम पारंपरिक धर्म की कमियों की ओर ध्यान दिया जिसके फलस्वरुप इन्होंने सन 1816 ई0 में 'आत्मीय सभा' तथा 1829 ई0 में 'ब्रम्हसमाज' की स्थापना की। इन्होंने पुरुष की मृत्यु के बाद स्त्रियों को संपत्ति का अधिकार देने की माँग की तथा सदियों से चली आ रही अमानवीय व्यवस्था 'सतीप्रथा' का विरोध किया। इसके लिए इनको कड़ा संघर्ष करना पड़ा। तत्कालीन समय में रुढ़िवादियों ने तो इनका परित्याग किया ही, इनके घर वालों ने भी साथ नहीं दिया। अगर देखा जाए तो प्रमुख समाज सुधारक ज्योतिबा फूले के विचारों को उनके माता-पिता ने भी स्वीकार नहीं किया। ये उन समाज सुधारकों में से थे जिन्होंने भारतीय समाज में नीची समझी जाने वाली जाति का समर्थन किया। इन्होंने सर्वप्रथम 1848 में बालिका विद्यालय की स्थापना की। इसमें पढ़ने वाली ज्यादातर लड़कियाँ इन्हीं जातियों से थीं। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सन 1875 में 'आर्यसमाज' की स्थापना की। इन्होंने 'वेदों की ओर लौट चलो' का नारा दिया। इनका प्रमुख एजेण्डा बाल-विवाह का विरोध एवं विधवा- विवाह का समर्थन था। इसका सबसे ज्यादा प्रभाव उत्तर भारत अर्थात पंजाब, हरियाणा तथा पश्चिमोत्तर प्रान्त पर पड़ा। जब यह आन्दोलन प्रयाग और बनारस की ओर बढ़ा तो इसका सनातनधर्मी पण्डितों ने घोर विरोध किया। जिसके फलस्वरुप इन्होंने बाल-विवाह और विधवा-विवाह आदि मुद्दों को छोड़कर नागरी प्रचार और गोवध-विरोध को अपना एजेण्डा बना लिया। इसका सबसे बड़ा कारण था दोनों का मुसलमानों के प्रति घृणा भाव। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अंग्रेजों को मुसलमानों से अच्छा माना।

सन्दर्भ ग्रंथ-सूची

1. आर. एस. सर्राजु, भारतीय उपन्यास साहित्य की भूमिका, सीता प्रकाशन मोतीबाजार, हैदराबाद, सं. 1988
2. आर. एस. सर्राजु, भारतीय उपन्यास साहित्य का उद्भव, मिलिंद प्रकाशन, तुलनात्मक समाजशास्त्रीय विश्लेषण, हैदराबाद,प्र. सं.2005
3. ओमप्रकाश भाटिया 'अराज', नागरी लिपि उद्भव सूर्य प्रकाशन, नई सड़क और विकास, दिल्ली-6, प्र. सं. 1978
4. कमला नारायण टंडन(सं.), उर्द साहित्य का संक्षिप्त प्रकाशन तेजनारायण इतिहास, टण्डन, विद्यामंदिर 68-69 एवेन्युराडै, प्र. सं. 1972
5. कर्मेन्दु शिशिर(सं.), नवजागरण कालीन पत्रकारिता अनामिका पब्लिशर्स और सारसुधानिधि, भाग-2, एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.), 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली, प्र. सं. 2008
6. कर्मेन्दु शिशिर (सं.), नवजागरण कालीन पत्रकारिता अनामिका पब्लिशर्स और सारसुधानिधि, भाग-2, एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.), 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली, प्र. सं. 2008
7. गोपाल राय, हिन्दी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं.-2005
8. जगन्नाथ प्रसाद षर्मा, हिन्दी गद्य-शैली का विकास, नागरी प्रचारिणी सभा,
9. डॉ. श्रीनारायण भारद्वाज, ऐतिहासिक उपन्यास तुलनात्मक कोणार्क प्रकाषन 61 एफ, अध्ययन, कमला नगर, दिल्ली, प्र. सं. 1983
10. डॉ. सेठ गोविन्द दास, राज भाषा-हिन्दी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयोग, सं. 1965
11. डॉ. शशि भूषण सिंहल, हिन्दी उपन्यासः प्रेम प्रकाशन मंदिर, नये क्षितिज, दिल्ली, प्र.सं.1992

www.ignited.in

12. डॉ. प्रेम भटनागर, हिन्दी उपन्यास शिल्प: अर्चना प्रकाशन 10-सी बदलते परिप्रेक्ष्य, जालूपुरा जयपुर प्र. सं.1968

13. डॉ. शांति भारद्वाज, हिन्दी उपन्यास प्रेम और जीवन, सुशील प्रकाशन पुरानी मंडी, अजमेर, प्र सं. 1968

Corresponding Author

Renu Mittal*

Assistant Professor, RKSD College, Kaithal, Haryana